कभी न हारने वाला सत्य

चार दिशाओं की ओर देखते चार सिंह तथा उनके नीचे अंकित सूत्र सत्यमेव जयते – यह भारत सरकार का प्रतीक है। एक रुपये का सिक्का हो या एक हजार का नोट – यह सूत्र हमें प्रतिदिन दिखाई देता है और हमारे मानस पर यह अंकित करने का प्रयास करता है कि सत्य की ही विजय होती है।

प्रश्न यह उठता है कि सत्य क्या है। महात्मा गांधी ने २० नवंबर, १९२१ को नवजीवन में प्रभु को सत्य कहा। कुछ वर्ष बाद नारायणदास गांधी को (२२ जुलाई, १९३०) लिखे पत्र में उन्होंने कहा कि प्रभु को सत्य कहने के स्थान पर बेहतर है कि यह कहा जाए कि सत्य ही प्रभु है। महात्मा गांधी का सत्य बड़ा लचीला था। वे अपनी मर्जी से जैसे चाहे सत्य को बदल लेते थे। १९२१ में नवजीवन में सत्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने प्रेम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, चोरी न करने तथा सभी अन्य नियमों को सत्य का अंग माना। लगभग डेढ़ दो दशक बाद अंग्रेज द्वितीय विश्व युद्ध हेतु लाखों भारतीय युवकों को भर्ती कर रहे थे। हिंसा के इस महायज्ञ में भारतीय यौवन की आहुति को भी संभवतः महात्मा गांधी ने सत्य का ही अंग माना तथा इसके विरोध में कोई सत्याग्रह चलाने से इन्कार कर दिया। परन्तु महात्मा की दृष्टि में भारत छोड़ो आंदोलन में एक गोरे अंग्रेज का मारा जाना सत्य के मार्ग से अक्षम्य भटकाव था।

महात्मा गाँधी ने १६ मार्च, १९२२ को साबरमती जेल से जमनालाल बजाज को लिखे पत्र में कहा कि 'ब्रह्म सत्यम् जगत मिथ्या' में छिपे महान सत्य को वे दिन प्रतिदिन अधिकाधिक अनुभव कर रहे हैं। यदि जगत मिथ्या है तो जगत के बारे में कही गयी हर बात भी निश्चय ही मिथ्या ही होगी। साथ ही यदि जगत मिथ्या है तो जगत का अंग, मैं, और मेरा नश्वर शरीर, भी मिथ्या ही है। मिथ्या के द्वारा मिथ्या के बारे में कहा गया कोई वचन तो कभी सत्य हो ही नहीं सकता। आश्चर्य यह है कि फिर भी महात्मा गाँधी ने सत्य बोलने को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना।

जब तक महात्मा जीवित रहे, भारत में सत्य का एकमात्र आधिकारिक स्रोत महात्मा का मुखारविंद था। उनके स्वर्गवास के पश्चात विनोबा भावे ने सत्य के प्रयोगों को जारी रखने की कुछ समय तक असफल कोशिश की। आज बाजार में सत्य की कोई दुकान नहीं बची है। न कोई बेचने वाला है और न ही सत्य की किसी को भी आवश्यकता है। लोगों को आज सत्य की नहीं सत्यमेव जयते छपे उन कागज के कड़क टुकड़ों की आवश्यकता है, जिसे हमारे ऋषि–मुनि माया कहते थे।

क्या वास्तव में सत्य आज के युग में निरर्थक, अनावश्यक हो गया है? क्या सत्यमेव जयते का शाश्वत सूत्र असत्य सिद्ध होकर चार शेरों के नीचे पड़ा एक निर्जीव शव मात्र है। मायावी हरे–नीले कागज के टुकड़ों को लक्ष्मी का स्थान दिलाने वाला यह वाक्य क्या केवल एक छल है। इन सब प्रश्नों का उत्तर निश्चय ही नकारात्मक होगा। समस्या न तो सत्य की है, न सत्यमेव जयते के सूत्र की है। समस्या हमारी समझ की है।

© All Rights Free

इसमें कोई संदेह नहीं कि महात्मा गाँधी द्वारा सत्य शब्द को जो अर्थ प्रदान किया गया, वह आधी शताब्दी से अधिक समय तक भारत में प्रचलित रहा। परन्तु अब सत्य की गाँधीवादी अवधारणा भारतीय मानस से लगभग ओझल हो चुकी है। साथ ही उस के आंतरिक विरोधाभास तथा विसंगतियाँ भी स्पष्ट दिखाई देने लगी हैं। अब समय आ गया है कि सत्य को नये सिरे से दार्शनिक आधार पर परिभाषित किया जाए। वास्तव में आवश्यकता किसी नयी परिभाषा की नहीं है। आवश्यकता तो सत्य को गाँधी द्वारा लादी गयी निरर्थक रहस्यात्मकता से मुक्ति की है।

सत्य के बारे में कुछ भी रहस्यमय नहीं है। यह तो एक अत्यंत सरल अवधारणा है। समस्त विश्व को हम अपनी इंद्रियों के माध्यम से अनुभव कर उसकी अपने मानस में एक छवि बनाते हैं। यदि छवि विश्व के अनुरूप है, तो छवि सत्य है अन्यथा असत्य। यह कोई रहस्य वाली या गूढ़ या तांत्रिक अर्थ वाली बात नहीं है। बहुत सीधी साफ बात है। उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। एक कमरे में लकड़ी की मेज पड़ी थी। एक व्यक्ति ने उसे लकड़ी की मेज कहा। दूसरे ने उसे लकड़ी का ढाँचा कहा। तीसरा गूँगा था। उसने उसका चित्र बना दिया। चौथा अंधा था। वह उस मेज से टकरा कर गिर गया। उसने मेज को ऊपर से टटोल कर देखा और कहा कि लगता है किसी ने लकड़ी का एक बड़ा बक्सा रख दिया है। स्पष्ट है कि पहले तीन के मानस में जो छवि बनी थी, वह सत्य थी और दृष्टिहीन के मानस में बनी छवि असत्य थी।

इस उदाहरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली कि कमरे में पड़ी वस्तु सत्य या असत्य नहीं होती। सत्य या असत्य तो हमारे मानस में बनी छवि होती है। दूसरी बात यह है कि एक ही वस्तु की भिन्न–भिन्न छवियाँ हो सकती हैं जो सभी सत्य हो सकती हैं। किसी भी छवि के सत्य या असत्य होने का निर्णय प्रमाण द्वारा किया जा सकता है। विभिन्न इंद्रियों द्वारा हमें भिन्न प्रकार के प्रमाण प्राप्त होते हैं। इनमें से कौन से प्रमाण स्वीकार करने योग्य हैं तथा कौन से स्वीकार करने योग्य नहीं हैं – इस पर मतभेद एवं विवाद हो सकते हैं। उदाहरण के लिए कान सुनी शेर की दहाड़ और आँख से देखे शेर में आँख का प्रमाण अधिक विश्वसनीय है। कई परिस्थितियों में आँख को भी धोखा हो जाता है। रात के अंधेरे में रस्सी का टुकड़ा साँप प्रतीत होता है। फिर भी इंद्रियाँ ही मनुष्य के लिए प्रमाण का प्रमुख स्रोत हैं।

इंद्रियों से प्राप्त विभिन्न प्रकार के प्रमाणों तथा बुद्धि के समुचित उपयोग से विश्व को समझने का प्रयास कर हम जिस सत्य को प्राप्त करते हैं, उसे ही विज्ञान कहते हैं। सत्य में विश्वास करने वाला विज्ञान को कभी नकार नहीं सकता। इसके ठीक विपरीत एक पुस्तक में विश्वास करने वाले व्यक्ति के सम्मुख विज्ञान और उस पुस्तक के बीच विरोधाभास की स्थिति में द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है। भारत में विज्ञान का कभी विरोध नहीं हुआ क्योंकि भारतीय परंपरा एकल पुस्तक आधारित न होकर मूलतः सत्यशोधक है।

सत्य की खोज में अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या इंद्रियों से प्राप्त प्रमाणों के अतिरिक्त भी कोई प्रमाण होने चाहिए। मन की अनुभूति को प्रमाण के रूप में स्वीकार करने के संबंध में बहुत लंबी बहस चली है। कुछ लोग अनुभूति को प्रमाण मान कर प्रभु के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। कुछ अन्य अनुभूति को प्रमाण मानने से इन्कार कर प्रभु को कल्पना मात्र मानते हैं। भारतीय परंपरा में दोनों प्रकार के विचारकों को सम्माननीय स्थान दिया गया है।

सत्य का एक और आयाम है – वह है मनुष्य का समाज एवं विश्व के अंग के रूप में जीवन। शीत, ग्रीष्म एवं वर्षा – तीन ऋतुएं बारी–बारी से आती हैं तथा इनके अनुसार ही वस्त्र धारण कर मनुष्य जी सकता है। प्रकति एवं समाज के साथ इस प्रकार का सामंजस्य जीवन के लिए आवश्यक है। स्वाभाविक है कि ऐसा सामंजस्य स्थापित करने के पूर्व विश्व को सही ढंग से समझना आवश्यक है। अर्थात दूसरे शब्दों में मानस में विश्व की ऐसी छवि बनाना आवश्यक है जो कि सत्य हो। शताब्दियों से विभिन्न चिंतकों, विचारकों, मनीषियों ने प्रकति एवं समाज को संचालित करने वाले नियमों को समझने का प्रयास किया है। सत्य की अपनी समझ के आधार पर उन्होंने मानव को प्रकृति एवं समाज से बेहतर सामंजस्य हेतु मार्गदर्शन देने का प्रयास किया। स्वाभाविक है कि देश–काल–परिस्थिति एवं व्यक्ति विशेष के स्वभाव के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामंजस्य का मार्ग भिन्न होगा। उदाहरण के लिए कोई सर्दी में बिना स्वेटर पहने काम चला सकता है तथा किसी को स्वेटर के साथ कोट भी चाहिए होता है। दोनों व्यक्तियों का देश–काल–परिस्थिति एक है पर स्वभाव भिन्न है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में सामंजस्य का मार्ग स्वयं चुनना होता है। प्रकृति एवं समाज के साथ–साथ अपने स्वभाव के संबंध में उसके मानस में बनी छवि के आधार पर वह यह चुनाव करता है। स्पष्ट है कि यदि यह छवि सत्य है तो वह सत्य के मार्ग पर चलेगा और यदि छवि असत्य है तो वह असत्य के मार्ग पर चलेगा। कुछ उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जाएगी। जेठ की गर्मी की दोपहर में एयरकंडीशनर के सामने बैठे व्यक्ति को सर्दी का अहसास हो सकता है। यदि वह उस अहसास के आधार पर कोट, स्वेटर इत्यादि पहन बाहर धूप में निकलता है तो उसका परेशान होना निश्चित है। इसी प्रकार एक व्यक्ति जिसकी अभिरूचि विज्ञान में है, स्वयं के बारे में गलतफहमी के कारण वैज्ञानिक बनने के स्थान पर वकील बन जाता है। असत्य पर आधारित इस प्रकार का जीवनमार्ग सुखद नहीं हो सकता। एक आदमी अपनी सगी बहन से विवाह करता है और उसे गंभीर आनुवांशिक समस्यों से ग्रसित संतान की प्राप्ति होती है। प्रकृति के नियमों की अवहेलना करने वाले इस आदमी के मन मे यह असत्यपूर्ण छवि थी कि इस प्रकार के नियम निरर्थक हैं। उपरोक्त उदाहरणों में व्यक्ति असत्य पर आधारित मार्ग का चयन कर ब्रह्मांड से एक असामंजस्यपूर्ण संबंध का निर्माण करता है तथा दुःख एवं परेशानी झेलता है। सत्य और असत्य के मार्ग में बस इतना ही अंतर है।

पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि सत्य के मार्ग की सही पहचान विकसित करना आसान कार्य नहीं है। विज्ञानरूपी सत्य तथा ब्रह्मांड से सामंजस्यकारक सत्य – इन दोनों स्वरूपों में मनुष्य हजारों वर्षों से सत्य की खोज निरंतर करता आया है और सदा करता रहेगा।

विज्ञान के रूप में, आंतरिक अनुभूति के रूप में तथा समाज एवं प्रकति से मनुष्य के संबंधों के आधार के रूप में जब हम सत्य को देखते हैं तो वह गाँधी के सत्य से बहुत विशाल स्वरूप धारण कर लेता है। इस सत्य का पालनकर्ता सत्य की रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर झूठ बोलने से भी संकोच नहीं करता। जैसा कृष्ण ने महाभारत में स्वयं भी किया और अन्य पात्रों से भी करवाया। यह विराट स्वरूप सत्य न कभी हारा है और न कभी हारेगा। इसी सत्य के लिए कहा गया है– सत्यमेव जयते।

अनिल चावला

२३ जनवरी, २००२